International Journal of Social Science and Humanities
www.humanitiesjournals.com
Online ISSN: 2664-8628 Print ISSN: 2664-861X
Received: 13-03-2025, Accepted: 12-04-2025, Published: 28-04-2025
Volume 7, Issue 2, 2025, Page No. 67-69

1857 की क्रांति में किसानों में स्व की चेतना

डॉ. धीरज कौशिक
सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, भगवान परशुराम, कॉलेज, कुरुक्षेत्र, हरियाणा, भारत

सारांश
बंगाल विजय के उपरान्त भारत में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी का भाग्य उदय हुआ। वह धीरे .धीरे एक व्यापारिक कम्पनी से साम्राज्यवादी कम्पनी में बदल गई। लॉर्ड कॉर्नवालिस की भू राजस्व प्रणाली, लॉर्ड वैलेजली की सहायक संधि प्रणाली एवं लॉर्ड डलहौजी की लैप्स की नीति ने भारत में असंतोष उत्पन्न कर दिया। जिसके कारण भारत के प्रत्येक वर्ग में कम्पनी राज के प्रति नफरत पैदा हो गई थी। किसानों में असंतोष का मुख्य कारण तत्कालीन लगान व्यवस्था एवं साहूकारों द्वारा लाभ उठाए जाने से उपजने वाला असंतोष था। जिसके कारण 1757–1857 के बीच किसानों में विदेशी शक्ति के विरुध स्व की अनुभूति होती है।

मूल शब्दः औपनिवेशिक, किसान, स्थाई बंदोबस्त, रैयतवाड़ी बंदोबस्त, महालवाड़ी बंदोबस्त, ताल्लुकेदार, जमींदार

1857 की क्रांति भारत ही नहीं अपितु विश्व के इतिहासकारों में इतिहासलेखन का प्रमुख विषय रहा है। जहां एक ओर अंग्रेज इतिहासकार इसे सिपाही गदर कहकर पुकारते रहे है, उनके अनुसार यह पूरी तरह देशभक्ति रहित और स्वार्थप्रेरित था जिसे न तो सहज नेतृत्व मिला और न ही जनसमर्थन। दूसरी ओर कुछ भारतीय लेखक 'स्वतंत्रता संग्राम' के रूप में इसका गुणगान करते है, जिसमें बड़ी संख्या में लोगों ने संघर्ष किया, फिरंगियों को टिकने नहीं दिया और अप्रिय अंत तक लड़ते रहे।[1] निम्नवर्गीय विचारधारा वाले लेखकों का मानना है कि 1857 का संघर्ष भारत के उच्च वर्गों के द्वारा नहीं बल्कि आम जनता, ग्रामीण किसानों, शिल्पकारों, मजदूरों एवं सिपाहियों की पहल का परिणाम था। रूद्रांगशु मुखर्जी ने 1857 में हिस्सा लेने वाले सिपाहियों को वर्दीधारी किसान की संज्ञा दी है। जो 1857 के दौरान वर्दी का त्याग कर साधारण किसानों में घुल–मिल गए थे । इस दृष्टि से 1857 का विद्रोह औपनिवेशिक काल के 'किसान संघर्ष के सभी लक्षणों से परिपूर्ण था। वह एक सुनियोजित संघर्ष था जिसमें पंचायतों द्वारा निर्णय–निर्माण की प्रक्रिया का स्पष्ट प्रावधान था।[2] इस लेख का उद्देश्य 1857 की क्रांति में कृषक वर्ग के योगदान का वर्णन करना है।

भारत में औपनिवेशिक शासन का आरम्भ अठारहवीं शताब्दी में उत्तरार्द्ध में बंगाल विजय से हुआ। बंगाल विजय के पश्चात् उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत की सर्वोच्च शक्ति के रूप में स्थापित हुई। अंग्रेजों ने भारत में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को अपनाया तथा कृषि के क्षेत्र में यूरोपियन ढंग की सामंतवादी व्यवस्था को लागू किया जो भारतीयों के शोषण पर आधारित थी जिसके, परिणामस्वरूप भारतीयों के मन में आक्रोश उत्पन्न हुआ, जिनमें से एक कृषक वर्ग भी था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने राजस्व प्रावधानों और व्यवधायी प्रबन्धों को अपने हितों के अनुसार भारत के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न रूपों में परिभाषित किया, जिसमें स्थाई बंदोबस्त, रैयतवाड़ी बंदोबस्त, महालवाड़ी बंदोबस्त और कुछ अन्य राजस्व प्रबन्धों को क्षेत्रीय परिस्थितियों के अनुसार लागू किया। इन सब बंदोबस्त और नीतियों का उद्देश्य केवल कम्पनी के खजाने को भरना था। इन्हीं नीतियों के कारण यहाँ पर बड़े–बड़े जमींदारों को अपनी जमीनों से हाथ धोना पड़ा, इसके साथ–साथ छोटे व गरीब किसान जो कम जमीन पर खेती करते थे । उन्हें भी राजस्व अदा नहीं करने के कारण अपनी जमीनों को बेचना पड़ा, जिसके कारण ये कृषि कार्य से वंचित हो गए जिसका असर हमें कृषक संघर्ष के रूप नजर आता है।

ब्रिटिश प्रशासन की स्थापना के साथ ही तत्कालीन प्रचलित भू–राजस्व प्रणाली का खत्म होना अनिवार्य था। भारत में अंग्रेज चाहते थे कि भूमि संबंधी सम्पत्ति के अधिकार को लागू किया जाए और इस तरह से किसानों और सरकार के बीच सम्बन्धों को पुनर्भाषित किया जाए।[3] बंगाल में कम्पनी ने बड़े जमींदारों तथा उन ग्रामीण पदाधिकारियों को जो इस क्षेत्र में नवाब के एजेंट थे तथा जिनके पास टैक्स एकत्र करने की शक्ति थी, उनकी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ सम्बन्धों में जटिलता आ गई थी। ब्रिटिश अधिकारी इस बात से सहमत थे कि ऐसे लोगों की स्थिति जस की तस बनी रहनी चाहिए और एक निश्चित भूमिपति वर्ग सामाजिक अनुशासन को उन्नत करें ।[4] धर्मा कुमार का मानना था कि लार्ड कार्नवालिस ने बंगाल की कृषि में गिरावट के मद्देनजर इस प्रकार के स्थाई बंदोबस्त को कृषि के पुनर्निर्माण के लिए सर्वोत्तम व्यवस्था माना और इसे सुरक्षित राजस्व और कम्पनी की वाणिज्यिक समृद्धि को सुनिश्चित करने का आधार बताया । स्थाई बंदोबस्त को लागू करने के पीछे कम्पनी के उद्देश्य को बंगाल के बुद्धिजीवियों ने स्पष्ट करते हुए लिखा है कि बंगाल के प्रतिष्ठित लोगों के साथ किया गया यह बंदोबस्त राजनैतिक असंतोष और जनता में विपल्व को दबाने के लिए और कम्पनी के द्वारा अपने लिए वफादार वर्ग तैयार करना था।[5]

स्थाई बंदोबस्त की नीति ने ग्राम्य समाज में विघटन पैदा किया और अधिकतर भागों में पुराने जमींदारों की शक्ति का हास और किसानों की दुर्दशा में वृद्धि परिणित हुई, जिससे पुराने जमींदारों का स्थान नए शहरी तत्वों ने ले लिया था। यद्यपि 1793 के भू–राजस्व के नियमन का उद्देश्य भूमि को एक सुरक्षित सम्पति बनाना था,[6] किन्तु इस व्यवस्था के कारण जमींदार सीधे तौर पर अंग्रेजों के विरूद्ध हो गए। मेलसन इस विषय पर लिखते हुए कहते है कि उस युग की नीति यह थी कि राजा और किसान के बीच किसी को आने न दिया जाए।[7] लेकिन इस वर्ग का खात्मा आर्थिक रूप से बड़े राज्यों को खत्म करने की नीति का ही परिणाम था कम्पनी ने भूमि व्यवस्था का जो तरीका चलाया, उसका नतीजा वही हुआ, जो इस्तमरारी बंदोबस्त के क्षेत्र में नए जमींदारों द्वारा पुराने परिवारों का स्थान ले लिया गया ।[8]

स्थायी बंदोबस्त का बंगाल में एक और परिणाम हुआ–भूमि सम्बन्धी अधिकारों का उप–विभाजन। जमींदारों ने अपने हित बिचौलियों को पट्टे पर दे दिए। बिचौलियों ने आगे और दूसरों को दे दिए। इससे लगान लेने वाले और चुकाने वालों की लंबी श्रृंखला बन गई, जो सरकार और वास्तविक किसान के बीच आ

गई। किसानों की पूरी तरह जमींदारों की दयादृष्टि पर निर्भर होने की बात 1819 में 'खेदपूर्वक स्वीकार की गई, किंतु तब भी किसानों को बचाने के कोई उपाय नहीं किए गए।[9]

रैयतवाड़ी व्यवस्था में किसानों की दुर्दशा का वर्णन करते हुए धर्मा कुमार ने लिखा है कि 1822 से पहले यदि एक बार किसी किसान का नाम भू–खण्ड के साथ रजिस्ट्रड हो जाता था तो उसे हर हाल में निर्धारित भू–राजस्व अदा करना पड़ता था, चाहे उसके द्वारा भू–खण्ड पर कृषि की गई हो या ना की गई हो। कभी–कभी तो भू–राजस्व एकत्र करने वाले व्यक्ति उन ग्रामीणों को वापिस पकड़ लाते थे जो भू–राजस्व न देने की स्थिति में अपना भूखण्ड छोड़कर भाग जाते थे। ऐसी स्थिति में वह न तो भू–राजस्व चुका पाते थे और ऋणदाताओं के चंगुल में फंस जाता था, जिसके कारण उनकी आर्थिक दशा अत्यंत खराब हो जाती थी। असिंचित भागों में भू–राजस्व नगदी के रूप में प्राप्त किया जाता था और सिंचित क्षेत्रों में भी जहां सरकार भू–राजस्व के बदले निश्चित मात्रा में अनाज एकत्र करती थी फिर भी सरकारी तंत्र का यह प्रयत्न रहता था कि वह भू–राजस्व को नकदी के रूप में प्राप्त करें।[10] सर जार्ज क्लार्क ने ब्रिटिश पार्लियामेंट की समिति के सम्मुख कहा कि रैयतवाड़ी क्षेत्रों में किसानों की हालत बिल्कुल भिखमंगों जैसी हो गई थी।[11]

बी०आर० तेमिल्सन का मानना था कि रैयतवाड़ी भू–राजस्व व्यवस्था ने 1838 में बम्बई दक्खन के भू–भाग के आधे भाग को बंजर घोषित कर दिया जबकि अन्य स्थानों पर गिरती हुई कीमतें, पतन की ओर अग्रसर व्यापार और आर्थिक संकट से एक सामान्य अर्थव्यवस्था की ऐसी गिरावट देखने को मिली कि जिसने रैयतवाड़ी सिद्धान्तों से होने वाले कृषि विकास की सारी आशाओं पर पानी फेर दिया था। एरिक स्टोक के विचार का समर्थन करते हुए तोमिलसन का मानना था कि बम्बई क्षेत्र में 1857 के दौरान किसानों के पास भूमिकर का इतना कम भाग छोड़ा जाता था कि उससे वे अपने परिवारों का भरण पोषण नहीं कर पाते थे, न ही ऋण चुका पाते थे और कृषि प्रबन्ध के लिए खर्च नहीं जुटा पाते थे ।[12]

महालवाड़ी बंदोबस्त एक वैज्ञानिक व्यवस्था थी जिसमें भू–राजस्व जरीब के हिसाब–किताब पर आधारित था। 1822 में इसका उद्देश्य कृषि कर्म का खर्च निकालकर उत्पादन नेट मूल्य का भाग लेना निश्चित किया गया, किन्तु 1833 में इसे 2/3 भाग वसूल करना तय किया गया ।[13] रैयतवाड़ी बंदोबस्त के समान ही महालवाड़ी बंदोबस्त में भी बिचौलियों का उन्मूलन कर और राज्सव मांगों को स्थायी रूप से सीमित न कर सरकार की राजस्व प्राप्तियों को अधिकतम करने के उद्देश्य से प्रेरित थी । जिसके कारण किसानों का भला तो हुआ साथ ही उन्हें एक विशाल फलते–फूलते परजीवी वर्ग का बोझ नहीं ढोना पड़ा । किन्तु आरम्भ से ही भू–राजस्व की वसूली में बड़ी सख्ती बरती गई जिससे काफी संख्या में मालिकाना जोते बिक गई।[14] इतिहासकार के और मेलसन का मानना था कि 'हमारी प्रवर्तित पद्धति के कारण जो लोग बहुत बड़े इलाकों के मालिक थे उनके पास कच्ची झोपड़ियों और पकाने खाने के कुछ बर्तनों के अलावा और कुछ न बचा ।[15]

चौधरी ने विश्लेषण किया कि भारत में ब्रिटिश सरकार ने 1857 को जन आंदोलन के रूप में कैसे देखा। उन्होंने संकट से निपटने के लिए अपनाए गए विभिन्न साधनों का उल्लेख किया, जिसमें सेना को बढ़ाना और ऋण लेने से लेकर कई क्षेत्रों में अपने अधिकार को फिर से स्थापित करने में विफलता शामिल थी। हालाँकि वे 'नागरिक विद्रोह' को मुख्य रूप से तालुकेदारी आंदोलन के रूप में देखते हैं, लेकिन वे निम्न जातियों सहित लोगों के विभिन्न वर्गों की भागीदारी का उल्लेख करते हैं। चौधरी के लिए 1857 एक विद्रोह और नागरिक विद्रोह दोनों है। लोगों ने अपने उत्पीड़कों के खिलाफ अपना गुस्सा जाहिर किया और सरकारी दफ्तरों, अभिलेखों, पुलिस स्टेशनों, टेलीग्राफ खंभों, रेलवे लाइनों और इंजनों को निशाना बनाया। दिलचस्प बात यह है कि वह सहारनपुर जैसे इलाकों का जिक्र करते हैं, जहां बनियों के घर उनके खातों के साथ जला दिए गए, खातों की किताबें शहर से बाहर ले जाई गईं और राजमार्ग पर फाड़ दी गईं। क्योंकि महाजन अंग्रेजों के पक्ष में थे। यूरोपीय लोगों के स्वामित्व वाली फैक्ट्रियों को नष्ट कर दिया गया और नील की फैक्ट्रियों को निशाना बनाया गया।[16]

1856 में अवध के विलय के समय जोन विलयम के कहते है कि अवध के दो तिहाई भाग पर अभी भी ताल्लुकेदारों का अधिकार था किन्तु अंग्रेजी सरकार इन्हें भूराजस्व एकत्रित करने वाला बिचौलिया समझती थी।[17] बंदोबस्त अधिकारियों की नजरों में ताल्लुकेदार ठगों से बेहतर नही थे। ताल्लुकेदारों को समाप्त करना अंग्रेजों के लिए ही उतनी वीरता का कार्य बन गया था जैसे शेर का शिकार करना। अंग्रेजों ने ताल्लुकेदारों का उन्मूलन इतनी सम्पूर्णता से किया कि जो लोग इनके विरुध थे, उन्होनें भी माना कि काम वाकई पूरी तरह से किया गया। ऊँच– नीच को समाप्त करने का यह अभियान था, जिसमें जमींदार को पूर्ण रुप से आदिम मनुष्य की अवस्था में पहुंचा दिया गया था।[18] टी०आर० होम्स का मानना था कि हम बर्ड के इस विचार से सहमत होकर कार्य कर रहे थे कि कम्पनी को अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो तथा ताल्लुकेदारों को निकम्मा और बेकार बना दिया जाए तथा उनके पास ऐसी जमीन न रहने पाए जिस पर वे अपनी पुश्तैनी अधिकार का सबूत न दे सके जो एक अंग्रेज वकील को संतुष्ट कर सके ।[19]

सरकार की इस नीति से ताल्लुकेदारों को काफी हानि हुई और उन्हें पुश्तैनी जमीन से बेदखल कर दिया गया । इनमें से अधिकांश ताल्लुकेदारों को जमीन उत्तराधिकार में, राज्य की विशेष सेवा के रूप में, तथा मुगल साम्राज्य के पतन के समय गलत तरीके से जमीन पर कब्जा ले लिया था। इसलिए कम्पनी ने हुक्म दिया कि भूमि की पूरी जाँच की जाए। इस जाँच का वर्णन करते हुए इतिहासकार 'के' कहते है कि पुनर्ग्रहण का अधिकारी को पूर्ण स्वतंत्रता थी और लोगों से कहा गया कि वे पुश्तैनी अधिकार के कागजात दिखाये जिसमें हमें संतोष हो इतने दिनों तक शांति से सम्पति भोगने के बाद, सम्पति का प्रमाण मांगना वहीं जबरदस्ती थी जबकि उनका एकमात्र प्रमाण जमीन पर कब्जा ही था। इससे आतंक हर ओर छा गया जो कुछ हुआ उसे यदि पूरी जब्ती का नाम दिया जाए तो गलत नहीं होगा।[20] थॉमस मेटकाफ ने स्वीकार किया है, 'शायद ही कोई यह कह सके कि 'कुछ नहीं हुआ है। उत्तर भारत के ग्रामीण समाज की शिकायतें जल्दी ही 1857 की शक्ल में अपेक्षाकृत जोरदार और हिंसक ढंग से व्यक्त हुई ।[21]

उपसंहार

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि भारत में अंग्रेजों ने भूमि पर निजी सम्पत्ति का सृजन करते हुए तीन अलग–अलग समूहों को मालिकाना अधिकार प्रदान करते हुए मालगुजारी की तीन व्यवस्थाएँ जमींदारी, रैयतवाड़ी तथा महालवाड़ी व्यवस्था को आरम्भ किया। ये व्यवस्थाएँ आरम्भ से ही किसानों की दरिद्रता का मूल कारण बनी । इन व्यवस्थाओं के कारण सरकार का मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक भू–राजस्व एकत्रित करना था। किसान से लगान के रूप में ली जाने वाली राशि इतनी अधिक थी कि जिसे चुकाने के लिए साहूकारों से ऋण लेना पड़ता था जो उनका शोषण करते थे । भू–राजस्व की अत्यधिक मांग ने जमींदारों तथा ताल्लुकेदारों को उनकी जमीनों से बेदखल कर दिया गया जिसके कारण किसानों, जमींदारों तथा ताल्लुकेदारों में सरकार के प्रति कृषक वर्ग में आक्रोश उत्पन्न हुआ और यह आक्रोश सरकार के समक्ष 1857 की क्रांति में कृषक संघर्ष के रूप में सामने आयज्ञं

संदर्भ सूची

1. पी॰सी॰ जोशी, इंकलाब 1857, नई दिल्ली, 2010, पृ॰ 3
2. हिमांशु राय, भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद एक अध्ययन, दिल्ली, 2013, पृ॰ 64
3. तीर्थकर राय, दा इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया 1857–1947, नई दिल्ली, 2011, पृ॰ 46
4. बी॰आर तोमिलसन, दा न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, खण्ड प्प, नई दिल्ली, 2013, पृ॰ 42
5. धर्मा कुमार, दा इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग–2,1757–2003, नई दिल्ली, 2010, पृ॰ 89
6. वही, पृ॰ 174
7. के॰ और मेलसन, हिस्ट्री ऑफ दा इण्डियन म्यूटनी, भाग–1, लंदन, 1868, पृ॰ 111
8. ताराचन्द, भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन का इतिहास, भाग–2, नई दिल्ली, 2007, पृ॰ 51
9. पी॰ सी॰ जोशी, पूर्वाद्धृत, पृ॰ 11
10. धर्मा कुमार, कलोनिएलिज्म, प्रोपैरिटी एण्ड स्टेट, नई दिल्ली, 2000, पृ॰ 19
11. आर॰ सी॰ दत्त, इण्डिया इन विक्टोरियल एज, एन इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ दा पीपील, दिल्ली, 1995, पृ॰ 59
12. बी॰आर॰ तोमिल्सन, पूर्वोद्धत, पृ॰ 46–47
13. सब्यसाची भट्टाचार्य, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, नई दिल्ली, 2013, पृ॰ 54
14. गिरिश मिश्रा, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, दिल्ली, 2013, पृ॰ 157–158
15. के॰ और मेलसन, पूर्वोद्धृत, पृ॰ 114
16. बिस्वामोये पाती, दा 1857 रेबिलियन, नई दिल्ली, 2007,पृ॰ ग्गप् दृ ग्गप्प्
17. मॉरल एण्ड मैटीरियल प्रोग्रेस एण्ड कण्डीशन ऑफ इण्डिया, 1872–73, पृ॰ 23
18. ताराचन्द, पूर्वोद्धृत,पृ॰ 52
19. टी॰ आर॰ होम्स, ए हिस्ट्री ऑफ दा इण्डियन म्यूटनी, लंदन, 1904, पृ॰ 25
20. के और मेलसन, पूर्वोद्धत, पृ॰ 123
21. शेखर बंधोपाध्याय, प्लासी से विभाजन तक, नई दिल्ली, 2009, पृ॰ 103